E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
www.allstudyjournal.com
IJAAS 2022; 4(3): 168-169
Received: 07-06-2022
Accepted: 11-07-2022

डॉ. सुमन रघुवंशी
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभागा, टीकाराम कन्या महाविद्यालय, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. सुमन रघुवंशी
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभागा, टीकाराम कन्या महाविद्यालय, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत

अनेकान्तवाद और सर्वज्ञानवाद

डॉ. सुमन रघुवंशी

सारांश
जैन दर्शन मे ''सर्वज्ञानवाद'' अथवा'' सर्वज्ञ का ज्ञान'' एक विशेष महत्व का विषय रहा है, किन्तु जैनेतर दार्शनिकों का मानना है कि ''सर्वज्ञ'' नाम की कोई भी वस्तु नहीं है क्योंकि वह न तो दिखाई देती है और न ही उसको तर्क के आधार पर सिद्ध किया जा सकता है। जैनेतर दार्शनिकों की यह उक्ति युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होती है क्योंकि चाहे कोई भी दर्शन रहा हो, वह किसी न किसी रूप में ''सर्वज्ञ'' की सत्ता को स्वीकार करता रहा है।

मुख्य शब्दः जैन दर्शन, सर्वज्ञ, दार्शनिक, तत्त्व, धर्मज्ञ

प्रस्तावना
पाणिनीय व्याकरण में सर्वज्ञत्व की व्युत्पत्ति ''सर्व जानातीति सर्वज्ञः '' के रूप में की गई है अर्थात् समस्त विषयों को अवगत कराने वाला ज्ञान। पालि तथा प्राकृत व्याकरणों की दृष्टि से भी समस्त द्रव्य और पर्यायों को जानने वाले ज्ञान का धारी 'सर्वज्ञ' होता है। यदि वस्तु–वाचकता की दृष्टि से विचार किया जाय तो संख्यात्मक और परिमाणात्मक समस्त वस्तुओं का ज्ञाता सर्वज्ञ है। गुणवाचकता की दृष्टि से सर्वज्ञता का अर्थ ''सारतत्वों का परिज्ञान'' है पर सारतत्त्वों का परिज्ञान भी दो अर्थो को प्रकट करता है – तत्वज्ञता और धर्मज्ञता। मीमांसक सर्वज्ञता से ज्ञेय अर्थो की जानकारी तो ग्रहण करता है, पर धर्मज्ञता उसे स्वीकार नहीं है। कोई मनुष्य अपने ज्ञान के बल से धर्मज्ञ नहीं हो सकता है, हाँ, तत्त्वज्ञता की प्राप्ति तो कर सकता है। अतः मीमांसादर्शन में समस्त ज्ञेय एवं प्रमेयों का परिज्ञान चाहे किसी को भी हो जाय पर वेद पर अधिकारी विद्वान ईश्वर के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता है। यह ईश्वर अलौकिक व्यक्तित्व सम्पन्न एवं असाधारण होता है। इस तरह मीमांसा दर्शन ''धर्मज्ञ'' के स्थान पर ''तत्त्वज्ञ'' को स्वीकार करता है।
वेदों में भी सर्वज्ञत्व का सिद्धान्त माना गया है। उनमें देवताओं की स्तुति एवं प्रसंशात्मक प्रार्थनाओं का वर्णन मिलता है। यद्यपि वेदों में सर्वज्ञ शब्द नहीं आया है तथापि इसके पर्याय शब्द विश्ववेदस्, विश्ववित, विश्वविद्वान, सर्ववित् आदि का प्रयोग हुआ है।
उपनिषदों में भी जो आत्मा का वर्णन प्राप्त होता है, वह सर्वज्ञ के अर्थ में ही हुआ है। धर्मशास्त्रों में भी धर्मज्ञता के रूप में सर्वज्ञता शब्द का प्रयोग होता है। इन ग्रन्थों में धर्म के समस्त सूक्ष्म तत्वों का ज्ञाता सर्वज्ञ माना गया है। बौद्धागम और जैनागम में भी तत्त्वज्ञ ही सर्वज्ञ कहा गया है। इस प्रकार प्राचीन वाड्मय में किसी किसी न किसी रूप में सर्वज्ञता विषयक उल्लेख प्राप्त होता है।
सामान्य रूप में भारतीय दर्शनों का विभाजनवैदिक दर्शन तथा अवैदिक दर्शन में किया जाता है। वेद की परम्परा में विश्वास रखने वाले न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त है तथा वेद की परम्परा में विश्वास न रखने वाले चर्वाक, जैन एवं बौद्ध हैं। वैदिक दर्शनों में केवल मीमांसा दर्शन ही ऐसा दर्शन है जो सर्वज्ञ की सत्ता को स्वीकार नहीं करता है। अवैदिक दर्शनों में चावाक सर्वज्ञ की सत्ता को नहीं मानता है, शेष जैन एवं बौद्ध सर्वज्ञ की सत्ता को स्वीकार करते हैं। इस प्रकार न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदान्त, बौद्ध और जैन ये सातदर्शन, सर्वज्ञवादी दर्शन हैं, तथा चार्वाक और मीमांसा ये दो सर्वज्ञाभावादी दर्शन हैं।

बौद्ध दर्शन में सर्वज्ञता
बौद्धदर्शन के प्राचीन ग्रन्थों का अवलोकन करने से यह ज्ञात नहीं होता है कि महात्मा बुद्ध 'सर्वज्ञ' थे या नहीं। क्योंकि, महात्मा बुद्ध ने किसी भी स्थान पर अपने को 'सर्वज्ञ' कहकर सम्बोधित नहीं किया है। इतना ही नहीं, महात्मा बुद्ध के अनुयायियों एवं शिष्यों ने भी इस तथ्य का उल्लेख नहीं किया है। व्यावहारिकता के आधार पर महात्मा बुद्ध ने अपने उपदेशो में धर्म का ही उपदेश दिया था, आध्यात्मिक तत्वों की व्याख्या हीं की थी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि महात्मा बुद्ध ''धर्मज्ञ'' थे सर्वज्ञ नहीं।

श्री कुमारिल जहाँ प्रत्यक्ष से धर्मज्ञता का निषेध करके धर्म के विषय में वेद का ही एकमात्र अधिकार सिद्ध करते हैं तो वहाँ आचार्य धर्मकीर्ति प्रत्यक्ष से ही धर्मज्ञाता का साक्षात्कार मान करके प्रत्यक्ष सिद्ध धर्मज्ञता का समर्थन करते हैं। आचार्य शान्तरक्षित और उनके शिष्य कमलशील, बुद्ध में धर्मज्ञता के साथ ही सर्वज्ञता की भी सिद्धि करते हैं ओर वे धर्मज्ञता को मुख्य तथा सर्वज्ञता को प्रासंगिक बतलाते हैं। इस तरह बौद्धदर्शन मे सर्वज्ञता की सिद्धि देखकर भी वस्तुतः उसका विशेष बल हेयोपादेयतत्तवज्ञता पर ही है, ऐसा प्रतीत होता है।

न्याय– वैशेषिक दर्शन में सर्वज्ञता

न्याय एवं वैशैषिक ईश्वर में सर्वज्ञत्व मानने के अतिरिक्त अन्य योगी आत्माओं में भी सर्वज्ञ की सत्ता को सिद्ध करते है। परन्तु, उनकी वह सर्वज्ञता अपवर्ग–प्राप्ति के पश्चात नष्ट हो जाती है क्योंकि वह योग तथा आत्ममनः संयोग–जन्य गुण अथवा अणिमा आदि ऋद्धियों की तरह एक विभूति मात्र है। मुक्तावस्था में न आत्मनः संयोग रहता है और न योग। अतः ज्ञानादि गुणों का उच्छेद हो जाने से वहा सर्वज्ञता भी समाप्त हो जाती है। न्याय तथा वैशेषिक ईश्वर की सर्वज्ञता को अनादि अनन्त मानते हैं।

सांख्य योग में सर्वज्ञता

सांख्य दर्शन का मानना है कि ज्ञान बुद्धितत्व का परिणाम और बुद्धितत्व महत्तत्त्वका और महत्तत्व प्रकृति का परिणाम है। अतः सर्वज्ञता प्रकृतितत्व में स्थित है तथा अपवर्ग के पश्चात समाप्त हो जाती है।

योगदर्शन का दृष्टिकोण है कि पुरूष विशेष रूप से ईश्वर में नित्य सर्वज्ञता है और योगियों की सर्वज्ञता, जो सर्व विषयक ''तारक'' विवेकज्ञान रूप है, अपवर्ग के बाद नष्ट हो जाती है। अपवर्ग अवस्था में पुरूष चैतन्य मात्र में, जो ज्ञान से भिन्न है, अवस्थित रहता है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक योगी को यह सर्वज्ञता प्राप्त ही हो। कहने का आशय यह है कि योगदर्शन में सर्वज्ञता की सम्भावना तो की गई है, पर वह योगज विभूतिजन्य होने से अनादि–अनन्त नहीं है, केवल सादि सान्त है।

वेदान्तदर्शन में सर्वज्ञता

वेदान्त दर्शन का मानना है क सर्वज्ञता अन्तः करणनिष्ठ है और वह जीवनमुक्त दशा तक रहती है, उसके पश्चात वह छूट जाती है। उस समय जीवात्मा अविद्या से मुक्त होकर विद्यारूप शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्ममय हो जाता है और सर्वज्ञता आत्मज्ञता में विलीन हो जाती है अथवा उसका अभाव हो जाता है।

जैन दर्शन में सर्वज्ञता

जैन दर्शन ने प्रारम्भ से ही त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती समस्त द्रव्यों की समस्त पर्यायों के प्रत्यक्ष दर्शन के अर्थ मे सर्वज्ञता मानी है और सभी जैनदार्शनिको ने एक स्वर में उस सर्वज्ञता का जोरदार समर्थन किया है। जैन दर्शन में धर्मज्ञता और सर्वज्ञता में भेद बतलाकर उनमें मुख्य गौणभाव नहीं बतलाया गया है। जैन दर्शन में धर्मज्ञता तो पूर्ण सर्वज्ञता के अन्तर्गत स्वतः ही प्राप्त हो जाती है। ऋषभदेव से लेकर महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थकर सर्वज्ञ हुए हैं। महावीर के समय में उनकी प्रसिद्ध सर्वज्ञ के रूप में थी। आचार्य हरिभद्र ने ''अनेकान्तजपताका के प्रारम्भ में महावीर की स्तुति सर्वज्ञ कहकर की है। आचार्य धर्मकीर्ति ने न्यायबिन्दु में दृष्टान्ताभासों के उदाहरण में ऋषभ और वर्धमान की सर्वज्ञता का उल्लेख किया है

यः सर्वज्ञः आप्तो वासज्योतिर्ज्ञानादिकमुपविष्टवान् तद् यथा ऋषभवर्धमानदिरिति''।

आगम – ग्रन्थों एवं तर्क – ग्रन्थों में हमें सर्वत्र सर्वज्ञता का प्रतिपादन मिलता है। षट्खण्डागम सूत्रों तथा आचारागसूत्र में सर्वज्ञता विषयक तथ्यों का वर्णन किया गया है। आवश्यक नियुक्तिकार भद्रवाहु बड़े स्पष्ट और प्रांजल शब्दों में सर्वज्ञता का प्रबल समर्थन करते हुए कहते हैं कि '–वीतराग भगवान् तीनों कालों अनन्य पर्यायों से सहित समस्त ज्ञेयों और समस्त लोकों को युगपत् जानते व देखते हैं।''

आगमयुग के पश्चात् तार्किक युग में भी स्वामी समन्तभद्र, सिद्धसेन अकलंक, हरिभद्र, पात्रस्वामी, वीरसेन, विद्यानन्द प्रभृति जैनदार्शनिकों ने सर्वज्ञता का प्रबल समर्थन किया है। आचार्य उमास्वाति ने भी तत्वार्थसूत्र में लिखा है कि केवल ज्ञान का विषय प्रतिनियम (सर्वद्रव्यपर्यायेषु) समस्त द्रव्यों में और उनके पर्यायों में है।

इस प्रकार जैन दर्शन में सभी जैनाचार्यो ने सर्वज्ञता को एक स्वर में स्वीकार कर उसको सिद्ध कर दिया है। आचार्य हरिभद्रसूरि ने भी ''अनेकान्तजयपताका'' ग्रन्थ के मंगलाचरण में ''सर्वज्ञ'' तथा ''सदभूतवस्तुवादी'' शब्दों का प्रयोग किया है। सर्वज्ञ की व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा है –

''सर्व – सूक्ष्मव्यवहित विप्रकृष्टं वस्तु जानाति इति सर्वज्ञः । अर्थात् सूक्ष्म और व्यवधान से युक्त तथा दूर स्थित वस्तु तत्व को जानने वाला सर्वज्ञ है। जो व्यक्ति भूत, भविष्य, वर्तमान में स्थित स्थल तथा सूक्ष्म सभी वस्तुओं को तात्विक रूप से जानता है वही सर्वज्ञ है। तीर्थकर महावीर सर्वज्ञ हैं। उनमें ज्ञानातिशय है।

आज के परिप्रेक्ष्य में इस लेख का उद्देश्य जैन धर्म के साथ–साथ अन्य धर्मों में सर्वज्ञ रूपी ईश्वर की सत्ता को स्पष्ट करने का विचार किया गया है। सर्वज्ञ की सत्ता के बिना अणु से अणु पदार्थ की कल्पना करना निराधार है।

संदर्भ सूची

1. गुरु गोपालदास वरैया स्मृति ग्रन्थ–सम्पादक कैलाशचन्द्र शास्त्री
2. ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद
3. जैन तत्त्व–ज्ञान–मीमांसा – डॉ0 दरबारी लाल कोठिया
4. अनेकान्तजय पताका – मंगलाचरण
5. तत्त्वार्थसूत्र